सृष्टि

मैं कहाँ से आया और क्या हूँ? मेरा अंत क्या होगा? जब मनुष्य अपने आप को आकृत जगत से धिरा हुआ देखता है, इस जगत के विषय में पूछता है कि यह क्या है और कहाँ से आया है? इसका बनाने वाला इसका अंश है, या इससे स्वतंत्र है। यदि इससे स्वतंत्र है तो उसका स्वरूप क्या है? क्या मनुष्य का जीवन इस जगत के विषय संबंध में ही व्यतीत होता है? या कोई और हस्ति भी है, जो इसके जीवन में दखल रखती है, इत्यादि विचार का सत्य ज्ञानेन्द्रियों से प्राप्त नहीं होता। वास्तव में एक ही तत्व है जो सदा एक सम रहता है। जिन लोगों की आखें विकृत से परे नहीं जाती, उनके लिये दृश्य संसार में दो वस्तुऐं हैं, प्रकाश और अंधकार। इन्हें अग्नि और पृथ्वी व पुरुष और स्त्री के नाम से भी पुकारा जाता है। सब वस्तुऐं इनके मिलाप से उत्पन्न हुई हैं। वर्तमान दृश्य सृष्टि के मध्य में बडी अग्नि है जहाँ बड़े देवता का स्थान हैं। इसके चारों ओर कई चक्र हैं, जिनमें प्रकाश और अंधकार मिले हुए हैं और सब के अंत में ज्वाला की एक दीवार है, इस में आनंद देने वाला प्रकाश उन्हें प्रतीत होता है।

हमारा ज्ञान हमारे अनुभवों तक सीमित है। चाहे मनुष्य तारों से भी ऊँचा उड़ जावे, यह अपने अनुभवों के चक्र से बाहर नहीं जा सकता। यह अनुभव दो प्रकार के हैं। एक वो जो ज्ञानेन्द्रियों द्वारा उत्पन्न होते हैं और दूसरे वह जिनको आत्मा अपनी अवस्थाओं का ध्यान करने से प्राप्त करता है। पहली प्रकार के अनुभव वाह्य जगत का ज्ञान देते हैं और उनके ग्रहण करने में हम परतंत्र हैं। यदि हम नेत्र खोलें तो यह हमारे वश में नहीं है कि हम कुछ देखें या न देखें। हम किसी अमिश्रित अनुभव को अपनी कल्पना से गढ़ नहीं सकते। अंधा अपने सारे मानसिक बल से नीले अथवा पीले रंग को अनुभव नहीं कर सकता। बहरा नहीं जान सकता कि शब्द क्या है। यह मनुष्य के वश में है कि वह भिन्न-भिन्न अमिश्रित अनुभवों को मिला कर नये मिश्रित भाव उत्पन्न करे। अन्य जीव केवल प्रत्यक्ष का अनुभव कर सकते हैं क्योंकि परमात्मा ने इतनी ही शक्ति दी। परंतु मनुष्य परोक्ष को अपनी ध्यानावस्था द्वारा अनुभव कर सकता है। मनुष्य अव्यक्त को व्यक्त मूर्ति मान अनुभव प्राप्त कर सकता है। इसी वास्ते मनुष्य शरीर को हस्त-छिन्न विषयों में न खोवें।

बोलो प्रेम से सच्चिदानंद सनातन ब्रह्म की जय।